CHETANA
International Journal of Education

Impact Factor
SJIF=5.689

Peer Reviewed/
Refereed Journal

ISSN-Print-2231-3613
Online-2455-8729

Prof. A.P. Sharma
Founder Editor, CIJE
(25.12.1932 - 09.01.2019)

Received on 20th Mar. 2021, Revised on 25th Mar. 2021, Accepted 30th Mar. 2021

शोधपत्र

गांधीय प्रतिमान और सतत् विकास

* डॉ. सुलोचना
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान
एस. के. राजकीय कन्या महाविद्यालय, सीकर
Email- sulochanapoonia1979@gmail.com, Mob. No.- 8387004000

बीज शब्द – *सतत् विकास, सत्य एवं अंहिसा, राजनीति का आध्यात्मिकरण, सर्वसम्पन्न राष्ट्र, आदर्श समाज, प्रन्याय या ट्रस्टीशिप, ग्रामीण–अर्थव्यवस्था, उत्पादन एवं वितरण–पद्धति, शोषक एवं शोषित, विकेन्द्रीकरण, सर्वोदय, पारिस्थतिकी रक्षण, मूल्योत्थान, ग्रामस्वराज्य, उदारीकरण व निजीकरण आदि।*

सार संक्षेप

गाँधी जी का सम्पूर्ण जीवन ही सत्य एवं अंहिसा की अविरल यात्रा थी। गाँधी सत्य के मार्ग पर चलने की हर सम्भव प्रयास करते थे। वे राजनीति के संत थे। गाँधी जी ने राजनीति का आध्यात्मिकरण कर उसे नैतिक व धार्मिक मूल्यों के साथ जोड़कर प्रकट किया। महात्मा गांधी के चिन्तन का क्षेत्र बहुत व्यापक एवं बहुआयामी है। गांधी मात्र विचारक, नेता तथा समाज सुधारक ही नहीं थे अपितु राजनीतिक चितंक एवं दर्शन को नया मोड़ देने वाले सक्रिय राजनीतिज्ञ, सन्त एवं विचारशील चिन्तक थे। गांधी के चिन्तन एवं कर्म का यद्यपि एक सन्दर्भ विशेष रहा है लेकिन वे केवल भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन एवं आधुनिक भारत की परिधि में ही आबद्ध नहीं किये जा सकते। वे निरन्तर मानवीय समस्याओं से जुड़े होने के कारण शाश्वत मूल्यों के उपासक रहे। समस्याएँ चाहे पश्चिमी दुनिया की हों अथवा तृतीय विश्व के नवोदित राष्ट्रों की, उनके समाधान में कहीं न कहीं प्रत्यक्षतः अथवा अप्रत्यक्षः गांधी की समबद्धता झलकने लगती है।

प्रस्तावना

गाँधी जी ईश्वर में जीवन्त विश्वास रखते थे तथा ईश्वर की आस्था दूसरों पर बल पूर्वक ना थोपकर दया व करूणा से मनवाने के इच्छुक थे। गाँधी जी ने ईश्वर को एक जीवन्त भक्ति मानते हुए मानवीय जीवन को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व नैतिक शक्तियों से संचालित माना है। ईश्वर में आस्था व्यक्ति के हृदय में नया ज्ञान तथा प्रकाश लाकर जीवन को निखारती है। ईश्वर को बुद्धि व तर्क की कसौटी पर नहीं जानकर श्रद्धा से अपने अन्दर विकसित करना चाहिए। गाँधी जी ने ईश्वर को सर्वव्यापक सत्य

मानते हुए उसे शुभ–अशुभ का मालिक माना है। क्योंकि ईश्वर ने बुराई पैदा करके स्वयं उससे कहीं ना कहीं अधुरा रहा है। बुराई से युद्ध करना ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करने का एक सबल मार्ग है। गाँधी जी ने कहा कि, ''यदि मैं प्राणों की बाजी लगाकर बुराई के खिलाफ युद्ध नहीं करूंगा तो मुझे ईश्वर का ज्ञान कभी नहीं होगा।'' गाँधी जी ने कहा कि, ''सब धर्म ईश्वर में आस्था रखते हैं, सब धर्मों ने अपनी स्वीकृत मान्यताओं के आधार पर उसे भिन्न–भिन्न नामों और रूपों में देखा एवं पूजा है। तात्कालिक आवश्यकता यह नहीं है कि एक धर्म हो, बल्कि यह है कि विभिन्न धर्मों के अनुयायियों में परस्पर आदर और सहिष्णुता हो। हम निर्जीव समानता नहीं करना चाहते, परन्तु विविधता में एकता चाहते हैं।''

मनुष्य अपने जीवन को सदैव निर्दोष और निर्मल रख कर ही जीवन की प्रत्येक समस्याओं का सामना करने में सफल हो सकता है। समाज में फैली बुराई, अंधविश्वास, झूठ से लड़ने तथा सत्य की सिढी को प्राप्त करने का ज्ञान ही गाँधीवादी दर्शन का मूल उद्देश्य है तथा प्रत्येक वर्ग व समाज में सभी नागरिकों को साहसी बनाकर अपने राष्ट्र में सत्य, प्रेम, शांति, सद्भावना व अहिंसा जागृत करता है। गाँधीजी के सत्य के परिवेश में केवल व्यक्ति ही नहीं वरन् समूह, समाज और सम्पूर्ण मानव जाति सम्मिलित है। गाँधीजी ने राजनीति को धर्म से कभी अलग नहीं माना। सत्य, अहिंसा तथा सत्यागृह के साधन से भारत में राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम का संचालन किया। मनुष्य को चारित्रिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक बल प्रदान करने के लिए साधन और साध्य का चुनाव सार्वजनिक जीवन में किया जाना चाहिए। गाँधी जी प्रत्येक राज्य के लिए नैतिकता की भावना रखते हुए, जनता के नेता होते हुए भी उनके साथ समायोजन की भावना रखते थे।

मानवीय जीवन में सत्य व अहिंसा का पालन धर्म, राजनीति, समाज व नैतिकता सभी में होना चाहिए। व्यक्ति व समाज का कोई पक्ष सत्य से अछुता ना रहे। गाँधीजी ने व्यक्तिगत आधार पर किए गए प्रयासों को सामाजिक हित सम्बन्धों से जोड़ा है। गाँधी जी ने सर्वसम्पन्न राष्ट्र की कामना करते हुए कहा कि, हमें सामाजिक, राजनीति, नैतिक, आर्थिक सभी समस्याओं से निकलने व समस्या को मिटाने का प्रयास करते रहना है। राज्य एक आवश्यक दुर्गुण है जो मानवीय जीवन के नैतिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक मूल्यों पर आघात करता है। हमें गाँधी जी के बताये हुए मार्ग पर चलकर राज्य से परे एक जनतन्त्र वादी समाज का निर्माण करना है और राजनीतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक व नैतिक आधारों पर राज्य को दूर करना है। प्रजा को निडर होकर अपने सामाजिक जीवन का पालन करना चाहिए। राज्य हिंसा का संगठित एवं केन्द्रीत रूप है। व्यक्ति के भीतर आत्मा है। लेकिन राज्य तो आत्मा–रहित मशीन है। राज्य को हिंसा से कभी नहीं बचाया जा सकता, क्योंकि उसकी उत्पति ही हिंसा से हुई है। गाँधी जी राज्य को एक कुण्ठित शक्ति मानते हैं जो मानव के व्यक्तित्व के विकास में बाधा उत्पन्न करती है। गाँधीजी ने एक आदर्श समाज की कल्पना की है। जिसमें बल प्रयोग नहीं वरन् नैतिकता की भावना हो।

विकास एकमार्गी अवधारणा नहीं है। विकास का सम्बन्ध सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, नैतिक, पर्यावरणीय संदर्भो से है। यहां प्रकृति व व्यक्ति के अन्तर्सबंध व परस्पर आवश्यकता को समझा जाता है। प्रकृति की स्वतस्फूर्त पुनर्भरण क्षमता तक संसाधनों का दोहन करके व्यक्ति की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करना और आत्मनिर्भर बनाकर आने वाली पीढियों के लिए समुचित आवश्यक दशाऐं गुणवत्तापूर्ण स्थिति में छोड़ देना ही सतत् विकास है। सतत् विकास के गांधीय प्रतिमान की बात करें तो यह स्वदेशी, सर्वोदय, पारिस्थतिकी रक्षण, मूल्योत्थान, ग्रामस्वराज्य जैसे बिन्दुओं से मिलकर बना है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. गाँधीवादी विकल्प के माध्यम से वर्तमान समस्या को सुलझाना।
2. सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, राजनीतिक, पर्यावरण, प्रदूषणजनित समस्या में संदर्भ में गाँधीवादी विकल्प का अध्ययन।
3. पीढ़ीयों का अन्तराल व विकास सम्बन्धी समस्याऐं व गाँधीवादी विकल्प।
4. गांवों, शहरों व नगरीकरण के विकास की समस्या का विकल्प।

परिकल्पना

परिकल्पना के रूप में जिन अनुत्तरित प्रश्नों एवं विचारों को व्याख्या प्रदान किया जाना निर्धारित किया गया है, उसकी व्याख्या की जा सकती है।

1. सतत् विकास के सन्दर्भ में पर्यावरण प्रदूषण वर्तमान समय की एक गंभीर समस्या है। पर्यावरण संरक्षण के लिए किए जा रहे प्रयास नाकाफी है। किस तरह पर्यावरण संरक्षण के लिए व्यक्तिगत व वैश्विक दोनों ही स्तरो पर प्रयासों की आवश्यकता है।
2. सतत् विकास हेतु पर्यावरण संरक्षण के लिए किये गये प्रयास व्यक्तिगत व वैश्विक स्तर पर कैसे नाकाफी साबित हो रहे हैं।
3. अति औद्यागीकरण का क्या विकल्प हो सकता है।
4. गांधीय प्रतिमान और सतत् विकास की आवश्यकता।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र मूलतः द्वितीयक सूचना स्रोतों पर आधारित है हालांकि प्राथमिक स्रोत भी समाहित किए गए है। प्रस्तुत अध्ययन की वस्तुनिष्ठता बनाए रखने के लिए शासकीय और अशासकीय संस्थाओं के द्वारा प्रकाशित/अप्रकाशित दस्तावेज, सांख्यिकी, आदेश, सूचना आदि का उपयोग किया गया है।

गांधीय प्रतिमान और सतत् विकास

प्रायः विकास का तात्पर्य केवल आर्थिक वृद्धि से ही समझा जाता है जो कि प्रकृति व व्यक्ति में किसी अन्तर्संबंध को ध्यान में रखे बिना केवल संसाधनों के अंधाधुंध दोहन की बात करती है। विकास एकमार्गी अवधारणा नहीं है। विकास का सम्बन्ध सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, नैतिक, पर्यावरणीय संदर्भो से है। सतत विकास में, प्रकृति–व्यक्ति सामीप्य, प्रकृति में अवांछित हस्तक्षेप नहीं, मानव के भौतिक–आध्यात्मिक उत्थान की बात, मानव के सभी संदर्भो का विकास या समावेशी विकास व विषमताओं व पार्थक्यवाद का अन्त आदि शामिल है।

सतत् विकास का गांधीय प्रतिमान : क्यों और क्या

अर्थव्यवस्था के उदारीकरण व निजीकरण के वातावरण में गांधीजी द्वारा प्रतिपादित विकास की अवधारणा को राजचिन्तकों, अर्थशास्त्रियों और पश्चिम समर्थक समाजशास्त्रियों ने अप्रांसगिक बताते हुए कहा कि गांधीमार्ग का अनुसरण करने हेतु हमें लौट कर पीछे की ओर जाना पड़ेगा जबकि हम आगे बढने के लिए कृतसंकल्प है। ऐसे में अब इन चिन्तकों को पुर्नविचार करना पड़ेगा कि वे जिस दिशा में बढने की बात कर रहें है वह तो व्यापक प्रदूषण, शोषण, विषमता, बाजारवाद व शस्त्रास्त्र होड़ से सर्वनाश के मुहाने पर खड़ी है। हकीकत यह है कि साम्यवादी मॉडल के पतनोपरान्त पूंजीवादी विकास प्रतिमान के प्रसार व अभिसिंचिन से जो लाभ मानव जाति को प्राप्त हुए हैं उससे कहीं अधिक हानि उठानी पड़ी है। विकसित–विकासशील देशों के मध्य खाई इतनी गहरी व चौड़ी हो चुकी है कि अब उसे पाटने हेतु यह निश्चित है कि विकासशील देश पश्चिम का अंधानुकरण न करके अपने विशिष्ट विकास प्रतिरूप का निर्माण स्वयं करें, जो उनके साधनों, संस्कृति और उनकी जरूरतों के अनुरूप हो। विकास लक्ष्यों की पूर्ति एकमात्र गांधीय मॉडल से ही संभव है जो ग्रामोद्योग से आत्मनिर्भर, नैतिक, मूल्याधारित, स्वदेशी और सर्वोदय की जीवन पद्धति बताता है। सतत् विकास के गांधीय प्रतिमान की बात करें तो यह स्वदेशी, सर्वोदय, पारिस्थितिकी रक्षण, मूल्योत्थान, ग्रामस्वराज्य जैसे बिन्दुओं से मिलकर बना है।

स्वदेशी – वर्तमान में स्थिति यह है कि सभी विकासशील राष्ट्र विकसित व प्रौद्योगिकी सम्पन्न राष्ट्रों के कर्जदार हैं और अपने प्राकृतिक संसाधनों के बेहतर उपयोग हेतु उन्हें विकसित राष्ट्रों की अनुचित मांगों को मानना पड़ता है। इस समस्या का निदान स्वदेशी में है। स्वदेशी के पीछे गांधीजी की मूल मान्यता यह थी कि प्रत्येक व्यक्ति अपने घर में आवश्यकतानुसार कपास बोए और चरखे व तकली के माध्यम से सूत कातकर वस्त्र बुन ले। इसके साथ अन्य प्रकार के ऐसे ग्रामोद्योग जो स्वयं स्थापनीय हों जैसे मधुमक्खी पालन, चर्मउद्योग आदि जिससे ग्राम स्वयं आत्मनिर्भर हो।

यदि दुनिया के समस्त विकासशील व अल्पविकसित देशों की जनता यह निर्णय कर ले कि वह अपने सीमित संसाधनों के दम पर स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करेगी तो आज जो ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियां गरीब और अशिक्षित जनता का शोषण कर रही हैं, वे स्वतः ही नष्ट हो जाएंगी। अत्यधिक उत्पादन, विश्व बाजार की प्रतियोगिता, भूमण्डलीकरण, प्रकृति का क्रूर दोहन, सैन्य गतिविधियां आदि समस्याओं के निदान का एक मात्र दीप स्तम्भ स्वदेशी ही है जो विश्व को रचनात्मक विकल्प की दिशा में अग्रसर करती है।

स्वदेशी न सिर्फ आर्थिक जीवन शैली के समस्त अवयवों के स्थानिक प्रश्नों का समाधान करती है, अपितु अनेक राजनीतिक प्रश्नों को भी हल करती है। गांधी स्वदेशी का केन्द्र औद्योगीकरण को न मानकर गांव को मानते थे जहां कायिक दाम के बूते पर यंत्रों के प्रति मोह त्यागकर प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं से अपना जीवनयापन होता है। स्वदेशी का अन्तिम लक्ष्य आत्मनिर्भर गांव हैं।

सर्वोदय – मार्क्सवादी व पूंजीवादी जहां आर्थिक पक्ष के विकास की बात करते हैं वहीं गांधी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक सभी पक्षों के विकास की बात करते हैं। बेंथम व मिल जहां बहुमत के अत्याचार से अल्पमत को 'अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख' कहकर भयभीत करते हैं वहीं गांधी जी सर्वोदय (नर–नारी, जड़–बुद्धिमान, अमीर–गरीब) की बात करते हैं। वस्तुतः गांधी के ही शब्दों मे सर्वोदय कोरी कल्पना नहीं अपितु साधन व साध्य दोनों ही के रूप में हमारा निर्देशक है। पूंजीवादी विकास प्रतिमान अमीर को और अमीर तथा गरीब को और गरीब करता है मगर सर्वोदय सबकी एक साथ उन्नति चाहता है और वर्गरहित, शोषण रहित समाज की प्रस्थापना करता है।

गांधी ने कहा था कि, ''यदि हमें सर्वोदय के स्पप्न को देखना है, अर्थात् सच्चे जनतंत्र की प्राप्ति, तो सबसे विनम्र एवं निम्न स्तर के भारतीय को इस भूमि के सर्वोच्च व्यक्ति के बराबर का शासक समझना होगा। वह यह मानकार चलना है कि सभी या तो शुद्ध है अथवा शुद्धता प्राप्त कर लेंगे और शुद्धता विद्वत्ता के साथ–साथ चलनी चाहिए। तब किसी को किसी समुदाय या जाति के विरूद्ध मन में भिन्नता (एवं खिन्नता) पालने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। सभी सबको अपने बराबर समझेंगे तथा सब 'सिल्क की डोरी' से प्यार में बंधे रहेंगे। कोई किसी को अछूत नहीं समझेगा। हम, धनाढ्य पूंजीपति एवं पसीना बहाने वाले मजदूर, दोनों को बराबर समझेंगे। आज हमें भी अपने समाज की आवश्यकताओं, आर्थिक मान्यताओं एवं राजनीतिक जटिलताओं को सुलझाने के लिए गांधी के सर्वोदय का सहारा लेना चाहिए।

ग्रामाधारित लोकतंत्र – पश्चिमी उदारवादी लोकतंत्र जिसकी आलोचना गांधीजी अपने 'हिन्द स्वराज' में करते हैं, दोषों को ग्रामाधारित लोकतंत्र से ही दूर किया जा सकता है। गांधी के अनुसार पश्चिम में संसद अवसरवादिता, दलबदल, भ्रष्टाचार शोषण को जन्म देने वाली सत्ता है जो अन्ततः पूंजीवाद व केन्द्रीकरण का कारण बनती है। गांधी के अनुसार ग्रामाधारित लोकतंत्र की नींव सत्याग्रह, ग्रामीण उद्योगों का विकास, रचनात्मक समाज, श्रमिकों के अंहिसा संगठन, एक सदनीय विधायिका, व्यस्क मताधिकार, स्वानुशासन आदि तत्वों से मिलकर बनी है।

सादा जीवन और प्रकृति–व्यक्ति संवाद – गांधी के अनुसार बनावटीपन की जिन्दगी में तड़क–भड़क और शानोशौकत के लिए सदैव प्राकृतिक संसाधनों का शोषण होता है। सहज व सरल जीवन जो प्रकृति से सामीप्य बनाकर रखने से प्राप्त होता है, कभी भी पर्यावरण प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग, अतिवृष्टि–अनावृष्टि, ओजोन परत क्षारण जैसी समस्याओं को जन्म नहीं देता है। व्यक्ति को एकादश व्रतों के अनुरूप अपनी आवश्यकताओं को सीमित कर लेना चाहिए।

अर्थ–दर्शन – तकनीकी दृष्टि से गांधी जी ने भले ही अर्थशास्त्र की बात न की हो, परन्तु उन्होंने मानव जाति की चेतना एवं अकांक्षा को सर्वसाधारण तक पहुंचाने में कभी भी चूक नहीं की। गांधी का अर्थ–दर्शन अर्थशास्त्र के ''भौतिक सुखों के अम्बार एवं एकत्रीकरण तथा केन्द्रीयकरण'' से ऊपर उठकर हमें वह दिशा तो अवश्य दिखाता है जिससे हम सत्य, नैतिक एवं अध्यात्म द्वारा पर्याप्तता–प्राप्ति में जुड़े रहकर न्यूनतम भौतिक आवश्यकताओं की पर्याप्ता को प्राप्त करते हुए प्राकृतिक मनुष्य को प्रधानता दें और उसके कल्याण के लिए कार्यरत रहें।

गांधी ने जब उपभोग को मात्र मोक्ष का एक साधन माना तो वहीं उन्होंने पूंजीवादी समाज की भर्त्सना भी की और उत्पादन के घटकों का विकेन्द्रीकरण करके धन के ऐसे सार्थक उपयोग का पक्ष लिया, जिसमें शोषण समाप्त हो, 'शोषक एवं शोषित' शब्दों की

समाप्ति हो और मानव–जाति की न्यूनता की दलदल से निकाल ऐसी पर्याप्तता की ओर ले जाया जा सके जिससे उसको आत्म–सुख का अनुभव हो। गांधी के उत्पादन साधनों में 'शोषण–रहित' साधनों के प्रयोग पर बल दिया गया है। देसाई ने गांधी की उत्पादन एवं वितरण–पद्धति पर टिप्पणी करते हुए लिखा था कि ''किसी देश की आदर्श आर्थिक स्थिति उसके कच्चे माल के निर्यातक के रूप में बने रहने में निहित नहीं है वरन् उसकी आत्मनिर्भरता में है।'' देसाई ने आगे लिखा है कि ''एक औद्योगिक देश के लिए एक आदर्श स्थिति उसकी आत्मनिर्भरता में होती है अर्थात् अपनी जनता को मुहैया करने वाली आवश्यक, आरामदेह एवं विलासिता की वस्तुओं का भरपूर उत्पादन ।''

गांधी ने लिखा था कि '' हमें यह देखना होगा कि सबसे पहले हमारे ग्रामीण आत्मनिर्भर हों इसके बाद वे अन्य लोगों की पूर्ति करें।'' ग्रामीण–अर्थव्यवस्था की कुंजी उसका स्वास्थ्य एवं पौष्टिक भोज्य पदार्थ है। एक किसान परिवार के बजट का बहुत बड़ा भाग उसके भोजन पर खर्च होता है। अन्य वस्तुएं बाद में आती है। खेतिहर को 'छक' जाने दीजिये। उसे भरपूर, दूध, घी, तेल, अण्डा, मछली, मांस (यदि वह मांसाहारी है तो) ले लेने दीजिए। क्या होगा उन शालीन कपड़ों का जब वह कमजोर एवं अध–भूखा है? मैं गरीबी, दरिद्रता, अभाव, चिन्तनीय अस्वास्थ्यकर वातावरण नहीं चाहता।

प्रायः विकास का तात्पर्य केवल आर्थिक वृद्धि से ही समझा जाता है जो कि प्रकृति व व्यक्ति में किसी अन्तर्संबंध को ध्यान में रखे बिना केवल संसाधनों के अंधाधुंध दोहन की बात करती है। विकास एकमार्गी अवधारणा नहीं है। विकास का सम्बन्ध सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, नैतिक, पर्यावरणीय संदर्भों से है। यहां प्रकृति व व्यक्ति के अन्तर्संबंध व परस्पर आवश्यकता को समझा जाता है। प्रकृति की स्वतस्फूर्त पुनर्भरण क्षमता तक संसाधनों का दोहन करके व्यक्ति की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करना और आत्मनिर्भर बनाकर आने वाली पीढियों के लिए समुचित आवश्यक दशाऐं गुणवत्तापूर्ण स्थिति में छोड़ देना ही सतत् विकास है।

गांधी का सारा जीवन सामाजिक अन्याय, आर्थिक विषमता, शोषण, गरीबी और ऊँच–नीच के विरूद्ध सतत् संघर्षरत था, क्योंकि ये सब असत्य के ही रूप या उसकी सन्तान है। गाँधीजी के लिए आजादी अपने आप में कोई साध्य नहीं था, पर भारत की दलित और पीड़ित जनता के ऋण का साधन था। गांधी का जीवन निरन्तर और आग्रहपूर्वक सत्य के आचरण में लगी हुई आत्मा की अखण्ड यात्रा थी, पर उनके सत्याचरण, उनके सत्य के प्रयोग केवल उनके लिए ही नहीं थे। उन्होंने उस पीड़ित, व्याकुल भारतीय मन की आजीवन पैरवी की जो अपने मिट्टी, अपनी संस्कृति और अपनी उत्कृष्ट मानवीयता को ध्वस्त होते देख कराह उठा था। गाँधीजी अपनी मिट्टी, अपने लोग, अपनी जमीन और अपनी परम्पराओं को उनकी समस्त कमजोरियों के बावजूद प्यार करने वाले नेता थे। भारतीय जनता की संघर्षशील परम्परा के महान् नेता थे।

गांधी का विकास–दर्शन

गांधी के विकास–दर्शन के सार को मुख्यतः इस प्रकार से बांटा जा सकता है–प्राकृतिक संसाधनों का पूर्ण दोहन एवं आवश्यकतानुरूप सदुपयोग, प्रन्यास या ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का पालन एवं एक अहिंसात्मक समाज की स्थापना के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु आर्थिक संरचना करने के मार्ग को समर्पित मानव–कार्य व पूंजीवाद की समाप्ति, श्रम के कल्याण के मूल्य पर मशीनीकरण का होना या इसे आगे बढ़ाना अहितकर एवं मानवश्रम विरूद्ध मानना ।

भारत को प्रारम्भ से ही गांवों का देश माना गया है। देश की बहुसंख्यक जनता गांवों में कृषि पर निर्भर करती है। लेकिन दुर्भाग्य यह है कि कृषि पर जितनी निर्भरता है, उत्पादन उतना ही कम है। इसलिए भारत के गांव विकास की मंजिल से दूर रह गए हैं। गांव की जरूरतें पूरी करने के लिए उन्होंने अनेक संस्थायें कायम की थी और ग्रामवासियों की शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक और नैतिक स्थिति सुधारने की उन्होंने भरसक कोशिश की थी। गांधी अपने को ग्रामवासी ही मानते थे और गांव में ही बस गये थे। देश पर विदेशी प्रभुत्व स्थापित होने से पहले सात लाख गांव स्वावलम्बी थे। अपनी आवश्यकता की प्रायः सभी वस्तुएं या तो खेतों से पैदा कर लेते थे अथवा अपनी झौंपड़ियों में फलने–फूलने वाली वस्तुओं से उनकी पूर्ति हो जाती थी। गांधी जी को गांवो की स्थिति सुधारने की सर्वाधिक आवश्यकता अनुभव हुई।

गाँधी–दर्शन ग्रामीण जीवन स्तर में सुधार और सम्पन्नता लाने के लिए चहुँमुखी विकास प्रयासों पर बल देता है। गाँधीजी के दिल में देहातों के लिए अटूट प्रेम था और ग्रामीण भारत की समस्याओं से वे पूरी तरह वाकिफ थे। गांधीजी चाहते थे–गाँवों का विकास हो। वे हमेशा देहातों की उन्नति की तरफ ध्यान दिलाते रहे और उनके सब रचनात्मक कार्यों का उद्देश्य गाँवों की गरीबी को दूर करना था। गाँवों की गन्दगी दूर करके उन्हें खूबसूरत बनाया जाए और सेहत, सफाई व खुशहाली का वातावरण पैदा किया जाए। वे चाहते थे कि ग्रामवासी भी स्वतंत्र भारत में अपना बाइज्जत स्थान हासिल करें। इसकी पूर्ति के लिए यह जरूरी था कि गांव में रहने वाली आबादी को रोजगार साधन सुलभ करके उनका जीवन–स्तर ऊँचा उठाया जाए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डी0 जी. तेन्दुलकर : महात्मा, लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी (बम्बई, 1951), खण्ड 11
2. कुमारप्पा, भारतन् : हमारे गांव का पुर्निमाण।
3. एम के गांधी : ''हरिजन''
4. एम के गांधी : ''यंग इण्डिया''
5. राजेन्द्र प्रसाद : गांधी की देन
6. एम के गांधी : ''नवजीवन''
7. डी. एम. दत्ता : ''द फिलॉसफी ऑफ महात्मा गाँधी'', द यूनिवर्सिटी ऑफ विसकोन्सीन प्रेस, मडीसन, 1953
8. जी.एन. धवन : ''द फिलॉसफी ऑफ महात्मा गाँधी'', नवजीवन प्रकाषन मण्डल, अहमदाबाद, 1957
9. एन. के. बोस : ''स्टेडिजज इन गाँधीज्म'', इंडियन एसोसिएटेड पब्लिषिंग कम्पनी, कलकत्ता, 1947
10. जे.बन्धोपाध्याय : ''सोशल एण्ड पॉलिटिकल थॉट ऑफ गाँधी'', एलाइड पब्लिषर, बॉम्बे, 1969
11. दादा धर्माधिकारी : ''लोकतंत्र, विकास और भविष्य'', सर्व सेवा संघ प्रकाषन, राजघाट–वाराणसी, 1969
12. श्री सिद्वराज ढड्ढा : ''ग्राम स्वराज्य क्यो?'', सर्व सेवा संघ प्रकाषन, वाराणसी, 1969

*** Corresponding Author**

डॉ. सुलोचना

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान

एस. के. राजकीय कन्या महाविद्यालय, सीकर

Email- sulochanapoonia1979@gmail.com, Mob. No.- 8387004000